Golden Research Thoughts
International Recognition Multidisciplinary Research Journal
RNI : MAHMUL/2011/38887
ISSN No: 2231-5063
Impact Factor 3.4052 (UIF) [Yr.2014]

ISSN 2231-5063 Impact Factor : 3.4052(UIF) Volume - 5 | Issue - 7 | Jan - 2016

किशोर छात्रों के व्यक्तित्व संरचना के विकास में खेल का महत्त्व– एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन

मृत्युंजय कुमार सिंह
शोधार्थी, ल0ना0मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा

सारांशः

मनोरंजन का मानव जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। स्वस्थ्य मनोरंजन हमारे जीवन के लिए परम आवश्यक है। इसके अभाव में जीवन नीरस हो जाता है। स्वास्थ्य मनोरंजन द्वारा हमारा जीवन उल्लास और उत्साह से भरा रहता है। स्वस्थ मनोरंजन वही है जो हमारे मन को खुशी दे, हमारे स्वास्थ्य में सुधार लाए और हमारे नैतिक विकास में भी सहायक हो। क्रीड़ा अथवा खेल स्वस्थ मनोरंजन का सबसे अच्छा साधन है।

प्रस्तावनाः

जीवन में शिक्षा के समान ही खेल का भी महत्त है क्योंकि खेल से स्वस्थ्य मनोरंजन होता हे। अतः क्रीड़ा को हमारी शिक्षा व्यवस्था का अभिन्न और अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए। ज्ञान और कला के पाठ्यक्रम के साथ–साथ खेल के पाठ्यक्रम का भी समावेश विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने खेल को एक सामान्य जन्मजात प्रवृत्ति माना है।[1–3]

'नालन्दा विशाल शब्द सागर' के अनुसार–'खेल' शब्द का सामान्य अर्थ है– 'चित्त की उमंग अथवा मन बहलाव या व्यायाम के लिए इधर–उधर उछल–कूद, दौड़–धूप या कोई अन्य साधारण कृत्य।

स्टर्न (Stern) के मतानुसार–'खेल एक ऐच्छिक आत्म नियंत्रित क्रिया है।''

ग्लूक (Glueck) के मतानुसार–''खेल वह है, जो कुछ हम करते हैं, हम अपनी इच्छानुसार करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।''

सर टी.पी. नन (Nunn) के मतानुसार–''खेल रचनात्मक क्रियाओं की व्यापक अभिव्यक्ति है।''

इस सन्दर्भ में त्वे ने कहा है–"Play is Nature's mode of education".

खेल के सन्दर्भ में थॉमसन (Thomson) के विचार हैं– ''खेल कुछ प्रवृत्ति जन्य क्रियाओं को करने की प्रवृति है।

वैलेण्टाइन (Velentine) के मतानुसार–'' खेल कार्य में एक प्रकार का मनोरंजन है।''

हरलॉक (Hurlock) के विचार में –''अन्तिम परिणाम का विचार किए बिना कोई भी क्रिया जो उससे प्राप्त होनेवाले आनन्द के लिए की जाती है, खेल है।''

क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) के मतानुसार–'' खेल की उस क्रिया के रूप में परिभाषा की जा सकती है। जिसमें एक व्यक्ति उस समय व्यक्त होता है, जब वह उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होता है, जिसे वह करना चाहता है।''

उपरोक्त विचारकों ने खेल के अर्थ को विभिन्न रूपों में प्रकट किया है। अतः थोड़े में खेल एक ऐच्छिक, स्वतंत्र, मूल प्रवृत्तिजन्य, आत्मनियंत्रित एवं उल्लास देने वाली एवं हमारी रचनात्मक क्रियाओं को अभिव्यक्त करनेवाली प्रणाली है।

खेल के प्रकार–

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक बालक के कृत्रिम विकास में उसको भिन्न–भिन्न प्रकार के खेल खेलते देखा जा सकता है। सभी अवस्थाओं के खेलों को मानव व्यवहार का एक अंग ही माना जा सकता है। कुछ प्रमुख बालोपयोगी खेल अग्रलिखित हैं–

1. **परीक्षणात्मक खेल–** इस प्रकार के खेलों में शिशु और बालक वस्तुओं को उलटते, पलटते, तोड़ते, फोड़ते देखे जाते हैं और उनके विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। इन खेलों का आधार जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार के खेल वैयक्तिक रूप से खेले जाते हैं।
2. **गतिशीलता के खेल–** यह खेल वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। ये खेल शरीर की गति का विकास करते हैं। इन खेलों में शैशवावस्था और बाल्यावस्था में हाथ–पैरों को हिलाना, दौड़ना, घूमना, उछलना, कूदना, मुँह से तरह–तरह की आवाजें निकालना आदि विभिन्न अंगों के संचालन संबंधी खेल आते हैं। इस प्रकार के खेल बालक के विकास की स्वाभाविक क्रिया है। जिसमें बाधा डालने से उसका विकास अवरूद्ध होता है। शिशु में दो वर्ष की अवस्था तक इसी प्रकार के खेलों का बाहुल्य रहता है।
3. **रचनात्मक या विधायक खेल–** रचनात्मक खेल व्यक्तित्व और सामूहिक दोनों ही प्रकार के होते हैं। बचपन में लड़के एवं लड़कियाँ मिलकर घरौंदे बनाते हैं, गुड्डे गुड़िया का ब्याह रचाते हैं। भोजन बनाते हैं तथा अनेक वयस्कों वाले खेल खेलते हैं। यह सभी क्रियाएँ बालकों के मन में उठने वाले रचनात्मक भावों की होती है। रचनात्मक खेलों में बालक के मन में कुछ नया करने की जिज्ञासा भी बहुत पबल होती हे। जैसे मिट्टी के घर, पहाड़, या नई–नई आकृतियाँ बनाना और फिर उन्हें अच्छे से अच्छा रूप देना। स्टर्न के अनुसार लड़कों में आविष्कार की प्रवृत्ति तथा लड़कियों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखलाई पड़ती है।
4. **बौद्धिकता के खेल**–ये खेल वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। आधुनिक सभ्य समाजों में बहुत से लोग शतरंज जैसे खेल भी खेलते हैं। जिनमें बुद्धि का विशेष रूप से प्रयोग करना होता है। बालकों में शब्द निर्माण तथा पहेलियाँ हल करना जैसे खेलों को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है।
5. **लड़ाई के खेल**–यह खेल दो समूहों के बीच खेला जाता है। इसमें विरोधी दल को हराना मूल उद्देश्य होता है। इस प्रकार के खेलों में टीम भावना की प्रधानता रहती है। लड़ाई के खेलों के अन्तर्गत–हॉकी, क्रिकेट, फुटबाल आदि टीमों के खेल, बैडमिण्टन, टेनिस आदि व्यक्तियों के खेल, कुश्ती, मुक्केबाजी आदि लड़ाई के खेल आते हैं। इस प्रकार के खेलों का निर्णय हार–जीत के आधार पर ही होता है।

खेल पर प्रभाव डालने वाले कारक

खेल पर प्रभाव डालनेवाले कारक अग्रलिखित हैं–

1. **लिंग–भेद–** विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह पता लगाया गया है कि शैशवावस्था और बाल्यावस्था में लड़के एवं लड़कियाँ लगभग एक से ही खेल खेलते हैं। 5–6 वर्ष की अवस्था में कभी–कभी अन्तर दिखाई देता है। जैसे लड़कियाँ गुड्डे–गुड़िया का खेल आरंभ करती हैं तो लड़के बैट–बॉल का। परन्तु मुख्य अन्तर 8–10 वर्ष की आयु के बाद दिखलाई पड़ता है। भारतीय समाज में तो यह अन्तर पारिवारिक वातावरण के कारण भी देखने को मिलता है। इसलिए लड़कियाँ घर में रहकर ही खेलना पसन्द करती हैं। जबकि लड़के तैरना, घुड़सवारी, क्रिकेट, हॉकी आदि। लेकिन वर्तमान में ऐसा नहीं है लड़कियाँ भी सभो खेलों में भाग लेकर आगे बढ़ रही है।
2. **मानसिक–भेद**–बुद्धि की विभिन्नता का भी खेलों पर प्रभाव देखा जा सकता है। बहुत बार प्रतिभावान, सामान्य बुद्धि मन्द–बुद्धि बालक एक से ही खेल खेलते देखे जा सकते हैं। लेकिन बुद्धि की अपेक्षा रुचि हमारे खेलों को अधिक प्रभावित करती है। यदि विद्यालयों में अध्ययन किया जाता है तो शिक्षार्थियों में अधिकतर प्रखर बुद्धि वाले बालक खेलों में कम और पढ़ने–लिखने में अधिक समय देते हैं।
3. **वातावरणीय अन्तर**–खेलों पर सबसे ज्यादा असर वातावरण का होता है। वातावरण में मौसम, समय, स्थान, साथी और परम्पराऐं शामिल हैं। इनके परिवर्तन से खेलों के रूपों में अन्तर पड़ जाता है जैसे–गाँव

और नगरों में, गर्म एवं ठण्डे प्रदेशों में, पहाड़ी स्थान और समुद्र के किनारे बालकों के खेलों में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है।

4. **आयु–** उम्र खेल को प्रभावित करने वाला एक खास कारक है। जैसे–जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है। वैसे–वैसे उसके खेल सरल से जटिल और अव्यवस्थित से संगठित होते जाते हैं। आयु बढ़ने के साथ–साथ बालक की रुचि बौद्धिक खेलों की ओर बढ़ने लगती है तथा वह सामूहिक रूप से खेलना पसन्द करता है।

खेल के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

बालकों में, वयस्कों में यहाँ तक कि प्रौढ़ों में भी खेल की प्रवृति पाई जाती है। बच्चे क्यों खेलते हैं? वे क्यों खेलना चाहते हैं? आदि प्रश्नों का उत्तर पाने का प्रयत्न विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। लेकिन खेलों में मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर विचारकों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न विचारकों ने खेल की व्याख्या भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों से की है। इन सिद्धान्तों पर दृष्टि डालने से खेल के मनौवैज्ञानिक तत्त्व स्पष्ट होते हैं। खेल के प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त अग्रलिखित हैं–

1. **अतिरिक्त–शक्ति का सिद्धान्त–**बालकों में अपनी दिनचर्या के कामों से उनकी शक्ति का पूरा प्रयोग नहीं हो पाता है। अतः वे अपनी अतिरिक्त शक्ति को खर्च करने के लिए खेल खेलते हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि शिलर के अनुसार––''खेल हमारी अतिरिक्त शक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम है।'' इस सिद्धान्त का समर्थन हर्बर्ट स्पेन्सर ने भी किया है। इसीलिए इस सिद्धान्त को 'शिलर–स्पेन्सर सिद्धान्त' की संज्ञा दी गई।

   प्रौढ़ व्यक्तियों में अधिकतर दिन भर कठोर परिश्रम करनेवाले लोग खेल नहीं खेलते क्योंकि उनमें खेल के लिए अतिरिक्त शक्ति नहीं बचती। दूसरी ओर जो लोग बैठे रहने का या आराम से होनेवाले व्यवसाय करते हैं, उन्हें खेल की आवश्यकता अनुभव होती है, इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार खेल व्यक्ति के लिए एक सुरक्षा बाल्व के समान हैं। इसके द्वारा उसका अतिरिक्त समय निकल जाता है।

   आज के समय में इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जाता है। इसके मुख्य तीन कारण हैं–

(क) बीमार बालक में अतिरिक्त शक्ति नहीं होती फिर भी वह खेलता है।
(ख) विकास विभिन्न अवस्थाओं में बालक की खेल संबंधी रुचियाँ बदल जाती हैं।
(ग) बहुत से खेलों से अतिरिक्त शक्ति मिलती हैं न कि कम होती है।

2. **पुनरावृत्ति का सिद्धान्त–**मानव जाति ने हजारों सालों के अपने विकास के क्रम में जो कुछ ग्रहण किया है वे गुण बच्चों में सूक्ष्म–संस्कार के रूप में मौजूद होते हैं। बच्चे अपने विभिन्न खेलों के द्वारा इन्हीं संस्कारों को दुहराते हैं। यह पुनरावृत्ति प्रकृति का स्वभाव है। यह सिद्धान्त पुराने संस्कारों की बात करता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जी स्टनले हॉल के अनुसार–एक बालक अपने खेलों द्वारा अपने पूर्वजों के उन सभी कार्यो को दोहराता है। जो वे आदि काल से करते चले आ रहे हैं। जैसे वृक्ष पर चढ़ना नदी में पत्थर फेंकना, शिकार करना, मछली पालना आदि।

   आधुनिक समय में इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया गया है। क्योंकि आधुनिक मनोवैज्ञानिक यह नहीं मानते कि मानव जाति द्वारा अर्जित गुण शिशुओं में संस्कार रूप में उपस्थित होते हैं।

3. **पूर्व अभिनय का सिद्धान्त–**इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कार्ल ग्रूस हैं। अनेक प्राणियों के खेलों का सूक्ष्म अध्ययन करके कार्ल ग्रूस इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि खेल के द्वारा प्राणी वयस्क अवस्था का अभ्यास करते हैं। बच्चों में भावी वयस्क जीवन की तैयारी करने की आन्तरिक प्रवृत्ति होती है। उदाहरण के लिए–बिल्ली का बच्चा गेंद के पीछे उसी तरह दौड़ता तथा उसे काटता है जैसे कि वयस्क अवस्था में वह चूहों के प्रति करता देखा जाता है। इसी तरह हिरन के बच्चे चौकड़ियाँ भरते हैं। मनुष्यों के शिशुओं में भी यही बात दिखलाई पड़ती है। लड़कियाँ गुड़ियों से खेलती हैं, घर बनाती है, गुड्डे–गुड़ियों का विवाह करती हैं और इसी तरह स्त्री सुलभ कार्यों को करती हैं। दूसरी ओर लड़का प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर या दुकानदार आदि का अभिनय करके खेल के द्वारा अपने भावी जीवन का पूर्व अभिनय कर लेते हैं।[4–5]

   यद्यपि मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस सिद्धान्त के आन्तरिक सत्य को स्वीकारा गया है लेकिन वे यह बात स्वीकार नहीं करते कि बालक खेल द्वारा जाने–अनजाने अपने वयस्क जीवन की तैयारी करता है।

4. **पुनः शक्ति–प्राप्ति सिद्धान्त–** इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जी.टी.डब्ल्यू पैट्रिक ने किया है। उनके मतानुसार खेल मनोरंजन के लिए खेले जाते हैं और मनोरंजन से व्यक्ति की थकान दूर होती है तथा उसे

खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त होती है। इसीलिए दिन भर के कार्य से थके हुए व्यक्ति भी शाम को खेलों के द्वारा मनोरंजन करते हुए देखे जाते हैं। शायद इसीलिए बालक भी पढ़ाई के बाद खेलना चाहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार खेल, काय से विश्राम देता है इसीलिए इसे विश्राम सिद्धान्त भी कहते हैं।

इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता है कि यह मनोरंजन को मुख्य तत्त्व मानता है और वयस्क लोगों के खेलों को भी महत्त्व प्रदान करता है। किन्तु इस सिद्धान्त से यह पता नहीं लगता कि बालक क्यों खेलते हैं क्योंकि बालकों के सम्बन्ध में यह तथ्य सही नहीं बैठता कि वे कार्य की थकान समाप्त करने के लिए खेलते हैं।

निष्कर्ष–

बाल–विकास में खेलों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। खेलने में बालक को आनन्द तो आता ही है, साथ ही साथ इस क्रम में उसकी विभिन्न मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति भी होती है। खेलों के द्वारा बालक स्वतंत्रतापूर्वक अपनी सामान्य प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करता है। इस क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतंत्र होता है और आन्तरिक प्रेरणा के कारण तरह–तरह के खेल खेलता है। यद्यपि इन खेलों में शिक्षक का निर्देशन कई प्रकार से मददगार होता है। लेकिन शिक्षक को खेलों में अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची–

1. योजना, नवम्बर–2009
2. योजना, अगस्त–2005
3. योजना, मई–2005
4. योजना, जनवरी–2006
5. योजना, मार्च–2006